Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 1, April-2018, ISSN 2230-7540

धर्मवीर भारती और धर्मयुग

Shiksha Rani*

M.A. in Hindi, B.ed. UGC NET (Hindi)

संक्षेप: ***धर्मवीर भारती और धर्मयुग का रिश्ता केवल शब्द और कागज का रिश्ता नहीं था। ये दोनों एक-दूसरे के इस हद तक पर्याय और पूरक बन गये थे कि एक धर्म (वीर) के बिना दूसरे धर्म (युग) की कल्पना भी असंभव हो गई थी। उनमें सच्चे अर्थों में शरीर और आत्मा का रिश्ता था। धर्मयुग शरीर था और धर्मवीर आत्मा। वैसे तो पत्रिका 'अचल' होती है और सम्पादक 'चल' किंतु धर्मयुग का यह सम्पादक जब टाइम्स बिल्डिंग से विदा लेकर बाहर निकला तो सभी को ऐसा लगा मानो धर्मयुग के शरीर से उसकी आत्मा निकाल ली गई हो। बिना आत्मा के शरीर कब तक प्राणवान रहता? धर्मवीर विहीन धर्मयुग ने भी कुछ वर्षों तक जल बिन मछली की तरह छटपटाते हुए अंततः अकाल मृत्यु का वरण कर लिया।***[1]

विशेष शब्द: ***टेकनीक, हृदयस्पर्शिता, रहाइसि, अभिजात्यपूर्ण, स्थानापन्न, प्रभावोत्पादक, प्रेषणीयता, छुवन।***

----------X----------

धर्मवीर भारती और धर्मयुग:

सामान्यतः किसी भी पत्रिका का सम्पादक स्वयं को पत्रिका में प्रकाशित होने वाली सामग्री के चयन, सम्पादकीय नीतियों और सम्पादकीय विभाग तक ही सीमित रखता है किंतु भारती जी ने अपने-आप को यहीं तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने व्यवस्था से लेकर पत्रिका के प्रसार तक सभी कार्यों में न केवल दिलचस्पी ली बल्कि सक्रिय और सार्थक भूमिका भी निभाई। इस सक्रियता के कारण ही धर्मयुग उस मुकाम तक पहुँच सका जहाँ हिंदी की कोई भी अन्य पत्रिका दूर-दूर तक उसके समकक्ष भी खड़ी नहीं हो सकी। धर्मयुग का प्रकाशन बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, बम्बई द्वारा किया जाता था।

कंपनी का निजाम एक संचालक मण्डल द्वारा संचालित होता था। यह सर्वोच्च सत्ता थी।[2] इसके कार्यों की नियमित समीक्षा के लिए प्रमुख आंतरिक अंकेक्षक नियुक्त किया गया था। आंतरिक अंकेक्षक, अंकेक्षण निरीक्षक व अन्य कर्मचारी इस कार्य में उसे सहयोग प्रदान करते थे। संचालक मंडल और विभिन्न विभागों के प्रमुखों के बीच सामंजस्य और सूचनाओं के आदान-प्रदान का दायित्व महाप्रबंधक का था। कंपनी के सभी प्रकाशनों में महाप्रबंधक का नाम भी प्रकाशित होता था। इसे सहयोग प्रदान करने के लिए एक सहायक महाप्रबंधक भी होता था।

प्रकाशन व्यवसाय के सुव्यवस्थित संचालन के लिए विभिन्न दायित्वों को निम्नलिखित विभागों में विभाजित किया गया था:-

1. प्रबंधन 2. सम्पादन 3. उत्पादन 4. कर्मचारी 5. व्यापार/प्रसार 6. विज्ञापन

कंपनी का सचिव प्रबंधन विभाग का प्रमुख हुआ करता था। प्रमुख लेखाधिकारी इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी हुआ करता था। उसके अधीन क्रमशः वाच और वार्ड सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रखर लेखापाल, लेखापाल व अधीनस्थ स्टाफ होता था।

उत्पादन विभाग का प्रमुख व्यवस्थापक (उत्पादन) होता था। मशीन सुपरिन्टेन्डेन्ट, बाइंडिंग सुपरिन्टेन्डेन्ट, कम्पोजिंग सुपरिन्टेन्डेन्ट व प्रोसेस सुपरिन्टेन्डेन्ट इसके अधीन काम करते थे।

कर्मचारी विभाग के प्रमुख व्यवस्थापक के अधीन कर्मचारी अधिकारी, प्रमुख अभियंता, पुस्तक विभाग प्रकाशन अधिकारी, व्यापारिक व्यवस्थापक व सभी शाखा कार्यालयों के प्रतिष्ठान अधिकारी आते थे। अन्य विभागों के कर्मचारियों का भी आर्थिक नियंत्रण इसी विभाग के पास रहता था।

व्यापार विभाग का प्रमुख व्यापार व्यवस्थापक के नाम से जाना जाता था। इस विभाग का मुख्य कार्य कंपनी के विभिन्न प्रकाशनों के प्रसार का पूरा हिसाब-किताब रखना ही नहीं बल्कि प्रसार संबंधी कारोबार में ज्यादा से ज्यादा वृद्धि करना भी था। प्रकाशनों के सुव्यवस्थित विपणन का उत्तरदायित्व भी इसी विभाग का था।

www.ignited.in

विज्ञापन विभाग का दायित्व सभी प्रकाशनों के लिए अधिक से अधिक विज्ञापन एकत्रित करना था। इसके लिए विज्ञापन व्यवस्थापक द्वारा विज्ञापनदाताओं को लुभाने के लिए समयबद्ध कार्य योजना तैयार की जाती थी। इस विभाग को अधिक महत्त्व इसलिए भी मिलता था क्योंकि कंपनी की आय का सबसे बड़ा साधन विज्ञापन ही थे।

सम्पादकीय विभाग का प्रमुख सम्पादक होता था। अन्य सभी विभागों के प्रमुख व्यवस्थापक जहाँ सभी प्रकाशनों के लिए एक होते थे, वहीं प्रत्येक प्रकाशन का सम्पादक अलग-अलग होता था। इसके लिए कंपनी ने प्रधान सम्पादक की अवधारणा को अंगीकार नहीं किया था। इसकी उत्तरोत्तर प्रगति का एक कारण यह भी रहा।[3] यहीं से धर्मयुग के प्रकाशन में धर्मवीर भारती की भूमिका प्रारंभ होती है।

भारती ने सम्पादक की इस परंपरागत कार्यप्रणाली से सर्वथा अलग कार्यप्रणाली अपनायी। सम्पादकीय विभाग किसी भी पत्र या पत्रिका का मूलाधार होता है। भारती जब धर्मयुग में सम्पादक थे तब इस प्रकाशन समूह की अन्य प्रमुख पत्रिकाएँ थीं- इलेस्ट्रेटेड वीकली, फिल्म फेयर, सारिका, माधुरी, फेमिना, दिनमान, पराग व साइन्स टुडे। बाद में कुछ वर्षों तक वामा का भी प्रकाशन हुआ। इन सभी पत्रिकाओं के सम्पादक अपने-अपने क्षेत्र के सुविख्यात व्यक्ति थे, परन्तु कम्पनी के सभी विभागों में जो लोकप्रियता और सम्मान भारती जी को प्राप्त था वह अन्य दिग्गजों को नहीं।

भारती जी जब धर्मयुग के आगामी अंकों की रूपरेखा तैयार करते थे तब अन्य विभागों के साथ सतत् तालमेल बनाकर रखते थे। धर्मयुग का जब कोई विशेषांक निकालना होता था तो विज्ञापन विभाग के प्रमुख को बुलाकर उसे विशेषांक की पूरी रूपरेखा बताते थे ताकि वह अपने विज्ञापनदाताओं को उक्त विशेषांक के बारे में भली-भाँति बताकर उनसे विज्ञापन प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार व्यापार विभाग के प्रमुख के साथ भी उनकी मंत्रणा होती थी। इस मंत्रणा का उद्देश्य यह होता था कि यदि व्यापार विभाग के प्रमुख को विशेषांकों के बारे में समय रहते पर्याप्त जानकारी होगी तो वह अपने शाखा कार्यालयों व अभिकर्ताओं से संपर्क कर उन्हें उस अंक की अधिक प्रतियाँ बेचने के लिए प्रेरित कर सकेगा और प्रिंट ऑर्डर देने से पहले ही बढ़ी हुई प्रतियों के बारे में अनुमान भी लगा सकेगा। इससे एक ओर जहाँ प्रतियों की बर्बादी को रोका जाता था, वहीं अधिक प्रतियों का अतिरिक्त प्रकाशन करने के बजाय पहले प्रिंट ऑर्डर में ही वह संख्या सम्मिलित हो जाती थी।

भारती जी की यह रणनीति कितनी कारगर होती थी इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 17 फरवरी 1980 को प्रकाशित धर्मयुग के एक विशेषांक की पाँच लाख सात हजार प्रतियाँ बिकी थीं। हिन्दी की साहित्यिक साप्ताहिक पत्रिकाओं के लिए यह आंकड़ा आज भी एक कीर्तिमान है।

सम्पादन:

धर्मयुग का प्रथम अंक सन् 1950 में बम्बई से प्रकाशित हुआ था। बैनेट कोलमैन एंड कंपनी ने प्रारंभ के दस वर्षों में तीन सम्पादक बदले किंतु धर्मयुग को वह स्वरूप प्रदान नहीं किया जा सका जो अपेक्षित था। संभवतः संचालक मंडल के मस्तिष्क में इसकी कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी। इसके बावजूद हिन्दी पाठकों ने इस पत्रिका का जोरदार स्वागत किया जिसके परिणामस्वरूप दस वर्ष में ही इसकी प्रचार संख्या लगभग 50 हजार तक पहुँच गई। यह अपने-आप में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। इन वर्षों में इलाचन्द्र जोशी के अतिरिक्त हेमचन्द्र जोशी व सत्यदेव विद्यालंकार ने भी धर्मयुग के प्रकाशन का उत्तरदायित्व संभाला।[4]

सन् 1960 में प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक धर्मवीर भारती को जब धर्मयुग के सम्पादन का दायित्व संभालने का आमंत्रण मिला तो भारती ने इसे न केवल एक स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया अपितु धर्मयुग को एक ऐसी संपूर्ण पत्रिका बना दिया जिसमें हर वर्ग और हर रुचि के पाठकों के लिए स्तरीय सामग्री की मनमोहक प्रस्तुति होती थी।

भारती जी की मेहनत जल्दी ही रंग लाई और धर्मयुग की गणना शीघ्र ही हिंदी की श्रेष्ठतम पत्रिका के रूप में होने लगी। धर्मयुग की सफलता को इस बात से भी समझा जा सकता है कि सातवें दशक के अंत तक यह पत्रिका बुद्धिजीवियों के लिए स्टेटस सिम्बल बन चुकी थी। पढ़ने-लिखने वाले हर घर में इसकी उपस्थिति अनिवार्य हो गई थी।

मुद्रण:

मुद्रण और सम्पादन दोनों बिलकुल अलग-अलग कार्य हैं। जिस प्रकार भारती जी को यह बर्दाश्त नहीं था कि किसी अन्य विभाग का कोई व्यक्ति सम्पादकीय विभाग में दखल दे उसी प्रकार अन्य विभागों के प्रमुख भी प्रायः यही चाहते हैं कि सम्पादक उनके कार्यों में कोई हस्तक्षेप न करे। यह मानसिकता तर्कसंगत इसलिए भी है कि जिस तरह मशीन चलाने वाला व्यक्ति सम्पादन कला का विशेषज्ञ नहीं हो सकता उसी प्रकार सम्पादक भी मुद्रण कला में पारंगत नहीं हो सकता था। यहाँ स्थिति थोड़ी सी भिन्न थी।

www.ignited.in

धर्मयुग के मुद्रण के संबंध में उन्होंने एक नई परम्परा यह प्रारंभ की थी कि जब भी नये अंक का प्रकाशन होता था तो मशीन को हरी झण्डी देने से पहले प्रकाशित हो रहे पृष्ठों को भारती जी से अनुमोदित करवाया जाता था। समूह की अन्य पत्रिकाओं में यह व्यवस्था कभी नहीं बन सकी।

अन्य विवरण:

धर्मयुग में भारती जी की भूमिका मात्र सम्पादकीय सामग्री तैयार करने तक ही सीमित नहीं थी, अपितु उसे पाठकों तक पहुँचाने और उसकी प्रसार संख्या को निरन्तर बढ़ाने में भी उसका सक्रिय योगदान रहता था। इस योगदान के परिणामों का आकलन करने के लिए प्रसार संबंधी कुछ आंकड़ों का अवलोकन करना ही पर्याप्त होगा।

वर्ष 1960 में जब भारती जी ने धर्मयुग के सम्पादन का दायित्व ग्रहण किया था तब इस पत्रिका की प्रसार संख्या 59,498 हजार थी। पाँच वर्ष बाद दिसम्बर 1965 तक इस संख्या में पचास हजार से भी अधिक की वृद्धि हो चुकी थी। कम्पनी के प्रसार विभाग के आँकड़ों के अनुसार इस समय तक यह पत्रिका 1,12,776 हजार छपने लगी थी। अगर गणितीय हिसाब से देखें तो भारती द्वारा सम्पादन का जिम्मा संभालने के बाद धर्मयुग की प्रसार संख्या में औसतन प्रतिवर्ष दस हजार की वृद्धि हुई। इस अप्रत्याशित वृद्धि की कल्पना तो प्रबन्धकों ने भी नहीं की थी। दिसम्बर 1970 में धर्मयुग की प्रसार संख्या 1,42,228 हजार थी और दिसम्बर 1975 में यह आँकड़ा 2,04,249 तक पहुँच चुका था। पहले पाँच साल धर्मयुग की प्रसार संख्या में बेतहाशा वृद्धि के साल थे। औसतन प्रतिवर्ष प्रसार संख्या में बीस हजार प्रतियों की बढ़ोत्तरी करते हुए धर्मयुग की प्रसार संख्या सन् 1980 में तीन लाख के जादुई आँकडे को छूने लगी थी।

न केवल बैनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड का संचालक मण्डल बल्कि प्रमुख प्रतिद्वन्दी हिन्दुस्तान टाइम्स का संचालक मण्डल भी धर्मयुग की इस सफलता पर चकित था। सभी लोग इस बात पर एकमत थे कि यह अकेले धर्मवीर भारती की उपलब्धि है। उनके अलावा यह चमत्कार कर पाना अन्य किसी के बूते की बात नहीं थी। इस मुकाम पर आकर भारती जी को अन्य संस्थानों से कई आकर्षक प्रलोभन भी मिले किंतु गुनाहों के देवता को यह गुनाह करना मंजूर न था।

सन् 1983 में कर्मचारियों की हड़ताल के कारण धर्मयुग के कुछ अंक प्रकाशित नहीं हो सके थे। सन् 1984 में पुनः हड़ताल हुई। इस बार इसकी अवधि लम्बी थी। धर्मयुग का स्वाधीनता दिवस विशेषांक (12 अगस्त से 18 अगस्त तक) छपने के लिए मशीन पर जा चुका था। इसके आवरण पर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का चित्र था। कर्मचारियों के अचानक हड़ताल पर चले जाने के कारण इस अंक का मुद्रण न हो सका। यह हड़ताल लगभग साढे चार महीने चली। सनद रहे कि 23 दिसम्बर 1984 को जब धर्मयुग का पुनः प्रकाशन प्रारंभ हुआ तब श्रीमती गांधी की हत्या हो चुकी थी।

धर्मयुग का यह उत्कर्ष धर्मवीर भारती का वन मैन शो था इस बात की सत्यता इस बात से भी प्रमाणित होती है कि जब अपने षष्ठिपूर्ति समारोह के बाद दिसम्बर 1987 में जब भारती जी ने धर्मयुग से विदा ली तो धर्मयुग अनाथ सा हो गया। इस बीच तीन लाख प्रसार संख्या तक पहुँचने वाली इस पत्रिका का प्रसार दिसम्बर 1986 में लुढ़क कर एक लाख 41 हजार तक आ गया।

इसके बाद के वर्ष एक दैदीप्यमान पत्रिका के शिखर से सिफर तक के सफर के दयनीय वर्ष हैं। भारती जी के बाद गणेश मंत्री, मनमोहन सरल और विश्वनाथ सचदेव ने धर्मयुग के सम्पादन का दायित्व संभाला, पर पत्रिका में जो रिक्तता, जो अभाव पाठकों को महसूस हो रहा था उसकी पूर्ति न कर सके। ये सभी भारती के साथी तो थे, पर भारती न थे; जबकि धर्मयुग को शायद केवल भारती की ही जरूरत थी। उसे भारती की लत जो लग चुकी थी।

धर्मयुग की तेजी से घटती प्रसार संख्या पर जब हरसंभव प्रयासों के बावजूद भी अंकुश न लगाया जा सका तो जुलाई 1990 में इस साप्ताहिक पत्रिका को पाक्षिक कर दिया गया। इसका आकार भी घटाकर इसे ए-4 आकार में प्रकाशित किया जाने लगा। इससे भी बिगड़ती हुई स्थितियों को नियंत्रित न किया जा सका और अंततः सन् 1995 में इसे बंद कर दिया गया। यह एक महान पत्रिका का अत्यंत दुःखद और दारूण अंत था, किंतु इस अंत से यह सत्य स्थापित हो गया कि कभी-कभी किसी एक व्यक्ति की निष्ठा और समर्पण किसी पत्रिका के लिए किस उस व्यक्ति को अपरिहार्य बना देती है।

संदर्भ सूची

1. शब्दों का यायावर: अपर्णा खरे, दैनिक नई दुनिया
2. हिन्दी पत्रकारिता के सिद्धान्त: आर.सी. त्रिपाठी, पृ. 231
3. मेरे दस सम्पादक: प्रकाश हिन्दुस्तानी, पृ. 65

www.ignited.in

4. हिन्दी पत्रकारिता के सिद्धान्त: आर.सी. त्रिपाठी, पृ. 233

Corresponding Author

Shiksha Rani*

M.A. in Hindi, B.ed. UGC NET (Hindi)